International Journal of Humanities, Social Sciences and Literary Research
(An International Peer-Reviewed (Refereed) Journal)
Website: www.ijhslr.org/
E-mail: editorinchief@ijhslr.org
ISSN (Online): 3139-3225

संस्कृत साहित्य में ईश्वर का स्वरूप: बहुदेववाद एवं एकेश्वरवाद के विशेष संदर्भ में

डॉ. रविकान्त कसौधन,
सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग,
हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी

Received: 25 April 2026, Revised: 15 May 2026, Accepted: 30 May 2026, Available Online: 30 June 2026
https://doi.org/10.5281/zenodo.21111213

सारांश

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय धर्म-दर्शन को 'बहुदेववादी' अथवा 'हीनोथीस्टिक' मानने के विपरीत, यह लेख वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, भगवद्गीता, पुराणों तथा स्तोत्र साहित्य के गहन अवलोकन के माध्यम से यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय परंपरा का मूल स्वरूप 'समावेशी एकेश्वरवाद' है। ऋग्वेद के महामंत्र 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' से लेकर उपनिषदों के 'एकमेवाद्वितीयम्' तक, संपूर्ण संस्कृत वांग्मय में एक सुसंगत दार्शनिक सूत्र प्रवाहित है। यह शोध पाश्चात्य एकेश्वरवाद की 'वर्जनात्मक' प्रकृति और भारतीय एकेश्वरवाद की 'समावेशी' प्रकृति के मध्य मूलभूत अंतर को भी रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द: एकेश्वरवाद, संस्कृत साहित्य, वैदिक दर्शन, उपनिषद, अद्वैत, समावेशी एकेश्वरवाद, बहुदेववाद

प्रस्तावना

भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृत साहित्य को जब भी किसी बाहरी दृष्टिकोण से देखा गया, तो सबसे पहली छवि जो उभरी, वह थी–अनेकता की। तैंतीस कोटि देवता, अनगिनत संप्रदाय, हजारों मंदिर और हर मंदिर में विराजमान अलग-अलग विग्रह। एक सतही पर्यवेक्षक के लिए यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत सरल प्रतीत होता है कि भारत एक 'बहुदेववादी' देश है, जहाँ प्रत्येक भय और प्रत्येक इच्छा के लिए एक पृथक देवता की कल्पना कर ली गई है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इस परंपरा को विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित किया है। कुछ ने इसे स्पष्ट रूप से 'बहुदेववाद' कहा, जबकि मैक्स मूलर जैसे मनीषियों ने इसे 'हीनोथीज्म' की संज्ञा दी–जिसका अर्थ है कि जिस समय जिस देवता की उपासना हो, उसी को सर्वोच्च मान लिया जाता है।[1] किंतु, क्या यह वास्तविकता है?

संस्कृत साहित्य, जो विश्व का सबसे प्राचीनतम और सुव्यवस्थित चिंतन का वाहक है, क्या इतना विखंडित हो सकता है? जब हम इस साहित्य के विशाल महासागर में गहराई से अवगाहन करते हैं–वेदों की संहिताओं से लेकर उपनिषदों के ब्रह्म-चिंतन तक, और महाकाव्यों से लेकर पुराणों और स्तोत्र साहित्य तक–तो हमें एक आश्चर्यजनक विरोधाभास का समाधान प्राप्त होता है। वह समाधान यह है कि भारतीय 'बहुदेववाद' वास्तव में एक विशाल, उदार और सर्व-समावेशी 'एकेश्वरवाद' का ही बहुरंगी आवरण है।

यह शोध पत्र इसी परिकल्पना को विभिन्न संस्कृत ग्रंथों के प्रमाणों के माध्यम से प्रतिपादित करने का प्रयास करता है। हम देखेंगे कि किस प्रकार वैदिक काल से लेकर पौराणिक युग तक, एकेश्वरवाद की एक सुसंगत धारा प्रवाहित है, जो कभी भी विविधता को खतरा नहीं मानती, बल्कि उसे उसी एक परम सत्ता की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ स्वीकार करती है।

वैदिक काल: एकेश्वरवाद की नींव

विश्व वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में हमें अनेक देवताओं की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। अग्नि, इंद्र, वरुण, मित्र– ये नाम बार-बार आते हैं। एक प्रथम दृष्टया में यह अनेकेश्वरवाद का प्रमाण प्रतीत हो सकता है। परंतु, ऋग्वेद के ऋषियों की दृष्टि इन प्राकृतिक शक्तियों से परे जाकर उस 'मूल शक्ति' को देख रही थी जो इन सभी को संचालित करती है।

ऋग्वेद का महामंत्र: 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'

ऋग्वेद के प्रथम मंडल का एक मंत्र भारतीय एकेश्वरवाद का 'मैग्ना कार्टा' कहा जा सकता है। ऋषि दीर्घतमा ने जब ब्रह्मांड की शक्तियों का विश्लेषण किया, तो उन्होंने पाया कि अग्नि की ऊष्मा, सूर्य का प्रकाश और वायु का वेग–ये सभी भिन्न-भिन्न नहीं हैं, अपितु एक ही परम सत्ता की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं:

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋग्वेद संहिता १.१६४.४६)

इस मंत्र का अर्थ अत्यंत गंभीर है। ऋषि कहते हैं कि जिसे लोग इंद्र (शक्ति का देवता), मित्र (सौहार्द का देवता), वरुण (नैतिकता का देवता) या अग्नि कहते हैं, वह सत्ता तात्विक रूप से 'एक' (एकं सत्) ही है। विद्वान लोग अपनी वाणी के माध्यम से उस एक ही सत्य को अनेक नामों से व्यक्त करते हैं।[2] यह 'बहुदेववाद' का खंडन नहीं, बल्कि उसका 'उत्क्रमण' है। यह स्पष्ट करता है कि विविधता केवल 'व्याख्या' में है, 'वस्तु' में नहीं।

हिरण्यगर्भ सूक्त: सृजन का एकमात्र स्वामी

ऋग्वेद के दशम मंडल में ऋषियों का चिंतन और भी सूक्ष्म हो जाता है। 'हिरण्यगर्भ सूक्त' में ऋषि एक मौलिक प्रश्न उठाते हैं–'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' (हम किस देवता के लिए हवि प्रदान करें?)। इंद्र, वरुण आदि समस्त देवताओं को परे रखकर वे उस 'एक' की तलाश करते हैं जो इन सभी देवताओं का भी जनक है:

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋग्वेद संहिता १०.१२१.१)

यहाँ 'पतिरेक आसीत्' (वह एकमात्र स्वामी था) वाक्यांश अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह वैदिक एकेश्वरवाद की स्पष्ट घोषणा है। वह हिरण्यगर्भ (स्वर्ण गर्भ) ही पृथ्वी और आकाश को धारण करता है। यहाँ देवताओं की भीड़ समाप्त हो जाती है और केवल एक 'स्रष्टा' शेष रह जाता है।

नासदीय सूक्त: निर्गुण एकेश्वरवाद

वैदिक चिंतन अपने शिखर पर तब पहुँचता है जब वह ईश्वर को 'सत्' और 'असत्' से भी परे मान लेता है। नासदीय सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि से पहले न मृत्यु थी, न अमरता, न दिन था, न रात:

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास।

(ऋग्वेद संहिता १०.१२९.२)

"वह एक (तदेकं) अपनी ही शक्ति से, बिना वायु के श्वास ले रहा था। उसके सिवा और कुछ भी नहीं था।" यहाँ ईश्वर को 'व्यक्ति' नहीं, बल्कि एक 'परम तत्त्व' माना गया है, जो पूर्णतः एकाकी है। यह एकेश्वरवाद का सबसे शुद्ध और अमूर्त रूप है।[3]

यजुर्वेद का महावाक्य

वेदों में एकेश्वरवाद को स्थापित करने वाला यह मंत्र 'शुक्ल यजुर्वेद' के बत्तीसवें अध्याय का प्रथम मंत्र है। इसे वैदिक दर्शन का 'प्रकाश-स्तंभ' माना जाता है, क्योंकि यह देवताओं के पृथक-पृथक नामों को एक ही परम सत्ता में विलीन कर देता है:

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

(यजुर्वेद संहिता ३२.१)

अर्थात् "वह (परमात्मा) ही अग्नि है, वही सूर्य (आदित्य) है, वही वायु है और वही चंद्रमा है। वह (परमात्मा) ही शुक्र (दीप्तिमान/पवित्र) है, वही ब्रह्म (महान) है, वही जल (आपः) है और वही प्रजापति (प्रजा का स्वामी) है।" यह मंत्र स्पष्ट रूप से समस्त प्राकृतिक शक्तियों और देवताओं को एक ही परम सत्ता की अभिव्यक्ति मानता है।

औपनिषदिक काल: ब्रह्मवाद और अद्वैत की स्थापना

वेदों के कर्मकांड के पश्चात् उपनिषदों का 'ज्ञानकांड' आता है। यहाँ ऋषियों ने प्रयोगशाला के वैज्ञानिक की भाँति उस 'एक तत्त्व' की खोज की, जिससे सब कुछ निर्मित है। मूल प्रश्न था–'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति?' (वह एक क्या है, जिसे जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है?)। उत्तर था–'ब्रह्म'।

. छांदोग्य उपनिषद्: अद्वितीयता का सिद्धांत

छांदोग्य उपनिषद् में पिता उद्दालक और पुत्र श्वेतकेतु का संवाद एकेश्वरवाद की सबसे तार्किक प्रस्तुति है। उद्दालक मिट्टी और घड़े का उदाहरण देते हैं–जैसे घड़े, सुराही, दीये भिन्न-भिन्न दिखते हैं, परंतु सत्य केवल 'मिट्टी' है। वैसे ही संसार विविध दिखता है, किंतु सत्य एक है:

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

(छांदोग्य उपनिषद् ६.२.१)

'एकमेवाद्वितीयम्' का अर्थ है–एक ही, जिसके जैसा दूसरा कोई न हो। यदि हम ईश्वर को 'एक' मानते हैं परंतु उसके साथ शैतान या प्रकृति को भी स्वतंत्र सत्ता मानते हैं, तो वह 'द्वैत' हो जाएगा। उपनिषदों का एकेश्वरवाद इतना दृढ़ है कि वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता को स्वतंत्र अस्तित्व ही प्रदान नहीं करता।[4]

प्रमुख उपनिषदों में एकेश्वरवाद

विभिन्न उपनिषदों में एकेश्वरवाद की अवधारणा को अलग-अलग शैलियों में प्रस्तुत किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'रुद्र' (शिव) को ही वह एक शक्ति माना गया है। यह उपनिषद् कहता है, 'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः' (रुद्र एक ही है, किसी दूसरे की सत्ता नहीं है)।[5] कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को बताते हैं कि रूपों की अनेकता के पीछे 'शक्ति' एक ही है। ईशोपनिषद् एकेश्वरवाद को मंदिरों से निकालकर कण-कण में स्थापित करता है–**'ईशावास्यमिदं सर्वम्'** (इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब उस एक ईश्वर से आच्छादित है)।

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक अत्यंत प्रसिद्ध संवाद है जहाँ ऋषि याज्ञवल्क्य से विदग्ध शाकल्य पूछते हैं कि "कितने देवता हैं?" याज्ञवल्क्य क्रमशः ३३०६, ३३, ६, ३, २ और अंततः कहते हैं: "एक इति" (केवल एक ही है)।[6] यह संख्याओं का क्रमिक न्यूनीकरण दर्शाता है कि कैसे अनेकता एकता में विलीन हो जाती है।

कैवल्य उपनिषद्: हरि-हर और इंद्र का एकीकरण

यह उपनिषद् एकेश्वरवाद का सबसे सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है जहाँ देवताओं के नामों के भेद को मिटाकर एक ही सत्ता को स्थापित किया गया है:

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥

(कैवल्य उपनिषद् १.८)

अर्थात् वही (एक परमात्मा) ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इंद्र है, वही अक्षर (अविनाशी) और परम स्वराट् (स्वयं प्रकाशमान) है। वही विष्णु है, वही प्राण है, वही काल (समय), अग्नि और चंद्रमा है। इस मंत्र में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) का एकीकरण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता: समावेशी एकेश्वरवाद

महाभारत के युद्धक्षेत्र में प्रदत्त गीता भारतीय एकेश्वरवाद का सबसे व्यावहारिक दस्तावेज है। यहाँ ईश्वर 'निराकार' भी है और 'साकार' (कृष्ण) भी। सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण अपनी स्थिति स्पष्ट करते हैं:

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७.७)

यह श्लोक 'सर्वेश्वरवाद' का उत्कृष्ट उदाहरण है। जैसे धागा दिखाई नहीं देता, परंतु वही मोतियों को माला का रूप देता है, वैसे ही एक ईश्वर समस्त देवी-देवताओं और प्राणियों को जोड़कर रखता है।[7] उस 'एक' के बिना, अनेक का कोई अस्तित्व नहीं।

नवम अध्याय में कृष्ण एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात कहते हैं। वे जानते हैं कि लोग इंद्र, सूर्य आदि की पूजा करते हैं। वे इसे गलत नहीं बताते, परंतु उसे 'अपूर्ण' कहते हैं–

'ये अप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। ते अपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्'

(जो भक्त अन्य देवताओं को श्रद्धा से पूजते हैं, वे भी मेरी ही पूजा कर रहे हैं, किंतु वह अविधिपूर्वक है)।[8] यह समावेशी दृष्टिकोण भारतीय एकेश्वरवाद की मौलिक विशेषता है।

स्तोत्र साहित्य: महिमा और अभेद

संस्कृत के स्तोत्र साहित्य ने एकेश्वरवाद को जन-जन तक पहुँचाया। इसमें शिवमहिम्न स्तोत्र और सहस्रनाम परंपरा का योगदान अद्वितीय है।

शिवमहिम्न स्तोत्र: धार्मिक सहिष्णुता का तर्क

गंधर्वराज पुष्पदंत द्वारा रचित यह स्तोत्र केवल शिव की स्तुति नहीं, बल्कि 'धर्म-निरपेक्षता' और 'एकेश्वरवाद' का घोषणापत्र है। सातवें श्लोक में उन्होंने संसार के विभिन्न मतों (सांख्य, योग, वैष्णव, शैव) की चर्चा की है:

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमितिप्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषांनृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

(शिवमहिम्न स्तोत्र, श्लोक ७)

यह श्लोक एक अद्भुत रूपक प्रस्तुत करता है। नदियाँ अलग-अलग पहाड़ों से निकलती हैं, कोई सीधी बहती है, कोई टेढ़ी-मेढ़ी, परंतु सबका अंत समुद्र में होता है। उसी प्रकार, मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न हैं—किसी को ज्ञान प्रिय है, किसी को भक्ति, किसी को योग। वे विभिन्न मार्ग चुनते हैं, परंतु हे ईश्वर! सबका एकमात्र गंतव्य 'तुम' ही हो।[9] यह स्पष्ट करता है कि 'अनेकेश्वरवाद' केवल मार्गों की अनेकता है, मंजिल (ईश्वर) की नहीं।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं , न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥ २६॥

इस श्लोक में पुनः एक शिव को सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी और आत्मा—इन आठ रूपों में विद्यमान बताया गया है और कहा गया है कि विद्वान लोग वेदों और शास्त्रों में उनको इन सीमित परिभाषाओं और नामों से पुकारते हैं। किंतु, हम तो उस तत्त्व को जानते ही नहीं, जो शिव न हों।

विष्णु सहस्रनाम: एक तत्त्व के अनंत गुण

क्या विष्णु के एक हजार नाम (सहस्रनाम) यह प्रदर्शित नहीं करते कि एक हजार देवता हैं? नहीं। महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर का प्रश्न सीधा है:

'किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्?'

(कौन एक देवता है?)। भीष्म पितामह उत्तर में एक हजार देवताओं की सूची नहीं देते, बल्कि उस 'एक' (विष्णु) के एक हजार गुणों का बखान करते हैं।[10]

संस्कृत साहित्य का तर्क है कि ईश्वर 'अनंत' है। यदि हम उसे केवल एक नाम (जैसे केवल 'गॉड' या 'अल्लाह') से पुकारें, तो हम उसकी अनंतता को सीमित कर देंगे। इसलिए, जब वह पालन करता है तो 'विष्णु' है, जब संहार करता

है तो 'रुद्र' है, जब वह मंगलकारी है तो 'शिव' है। विष्णुसहस्रनाम में विष्णु के नामों में 'शम्भु', 'ईशान' और 'रुद्र' का आना 'हरि-हर अभेद' को सिद्ध करता है।

शाक्त परंपरा: शक्ति अद्वैतवाद

मार्कण्डेय पुराण के अंतर्गत 'देवी माहात्म्य' में शाक्त एकेश्वरवाद प्राप्त होता है। युद्ध भूमि में असुर शुंभ देवी का उपहास करता है कि वह अकेली नहीं लड़ रही, बल्कि अनेक देवियों (काली, ब्रह्माणी, वैष्णवी) की सहायता ले रही है। तब देवी जो कहती हैं, वह संस्कृत साहित्य का एक महत्वपूर्ण सत्य है:

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥

(दुर्गा सप्तशती १०.५)

"इस जगत में मैं अकेली ही हूँ। मेरे सिवा दूसरी कौन है? देख, ये सब मेरी ही विभूतियाँ हैं।" और उसी क्षण समस्त देवियाँ देवी के शरीर में समा जाती हैं। यह दृश्य प्रदर्शित करता है कि बहुदेववाद केवल एक 'मंच-सज्जा' है, नाटक की नायिका और सूत्रधार 'एक' ही है।[11]

दार्शनिक मीमांसा: तर्क की कसौटी पर एकेश्वरवाद

संस्कृत के दर्शन शास्त्रों ने श्रद्धा से आगे बढ़कर तर्क के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध किया है। न्याय दर्शन में नैयायिकों ने 'कार्य-कारण सिद्धांत' का प्रयोग किया। आचार्य उदयन ने 'न्यायकुसुमांजलि' में तर्क दिया कि संसार एक 'कार्य' है, अतः इसका एक कर्ता होना चाहिए। यदि अनेक ईश्वर होते, तो उनमें 'मतभेद' होता और सृष्टि की व्यवस्था नष्ट हो जाती।[12]

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में ईश्वर को एक 'आदर्श चेतना' माना है–**'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'** (जो क्लेश, कर्म और उसके फलों से अछूता है, वह एक 'विशेष पुरुष' ईश्वर है)।[13] अद्वैत वेदांत में आदि शंकराचार्य ने एकेश्वरवाद को समझाने के लिए सूर्य और जल के पात्रों का उदाहरण दिया–आकाश में सूर्य एक है, परंतु हजार घड़ों में उसके प्रतिबिंब दिखते हैं। जीव अनेक हैं, देवता अनेक हैं, परंतु उन सबमें चमकने वाला 'आत्म-तत्त्व' एक ही है।

निष्कर्ष: भारतीय एकेश्वरवाद की विशिष्टता

इस विस्तृत विवेचन के अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत साहित्य में एकेश्वरवाद की धारा आदि से अंत तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। परंतु, इस एकेश्वरवाद और सेमिटिक एकेश्वरवाद में एक मौलिक अंतर है। पश्चिम का एकेश्वरवाद 'वर्जनात्मक' है–केवल मेरा ईश्वर सत्य है, अन्य सब मिथ्या हैं। इसके विपरीत, भारतीय एकेश्वरवाद 'समावेशी' है–केवल ईश्वर ही सत्य है, और सब कुछ उसी का रूप है।

ऋग्वेद के 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' से लेकर गीता के 'वासुदेवः सर्वम्' (सब कुछ वासुदेव ही है) तक, संस्कृत साहित्य ने कभी भी विविधता को खतरा नहीं माना। इसने स्वीकार किया कि जैसे एक ही मिट्टी से सुराही, कुल्हड़ और दीये निर्मित होते हैं, वैसे ही एक ही 'ब्रह्म' इंद्र, वरुण, शिव, विष्णु और देवी के रूप में प्रकट होता है। अतः, संस्कृत साहित्य हमें सिखाता है कि तैंतीस कोटि देवताओं की पूजा 'भटकाव' नहीं, बल्कि उस 'एक' विराट पुरुष की अनंत महिमा का उत्सव मनाना है।

यह शोध पत्र प्रतिपादित करता है कि भारतीय परंपरा में एकेश्वरवाद केवल एक धार्मिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक दार्शनिक सत्य है जो तर्क, अनुभव और श्रद्धा–तीनों के आधार पर स्थापित है। यह एकेश्वरवाद न केवल विविधता को स्वीकार करता है, बल्कि उसे अनिवार्य मानता है, क्योंकि अनंत को केवल अनंत रूपों में ही अभिव्यक्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद संहिता। *काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६३।*
2. यजुर्वेद संहिता (शुक्ल)। *मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८५।*
3. उपनिषद् संग्रह। *गीता प्रेस, गोरखपुर, २००२।*
4. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य सहित)। *गीता प्रेस, गोरखपुर, १९९८।*
5. महाभारत। *गीता प्रेस, गोरखपुर, २००५।*
6. दुर्गा सप्तशती (मार्कण्डेय पुराण)। *गीता प्रेस, गोरखपुर, २००१।*
7. शिवमहिम्न स्तोत्रम्। *मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९०।*
8. योगसूत्र (व्यासभाष्य सहित)। *कैवल्यधाम, लोनावला, १९९५।*
9. न्यायकुसुमांजलि (उदयनाचार्य)। *चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८८।*
10. मूलर, मैक्स। *The Six Systems of Indian Philosophy.* लंदन: लॉन्गमैन्स ग्रीन एंड कंपनी, १८९९।
11. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली। *भारतीय दर्शन (भाग १ और २)।* राजपाल एंड संस, दिल्ली, २००८।
12. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ। *A History of Indian Philosophy (Vol. 1-5).* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२२-१९५५।
13. हिरियन्ना, एम.। *Outlines of Indian Philosophy.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९३।